बिहारी का देखा हुआ समाज

बिहारी के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी प्राप्त हुई है उसके आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उनका जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। पर जयपुर-दरबार की कृपा से वे सामंतीय वर्ग में दीक्षित हो गए। फिर तो उन्होंने अपने को उस वातावरण में ऐसा ढाला कि उनका समूचा दृष्टिकोण नागरिकों का दृष्टिकोण हो गया। इसलिए उनके देखे हुए समाज का विश्लेषण करते हुए इस बात का ध्यान रखना होगा कि उन्होंने जो कुछ कहा है 'नागरता के नाम' कहा है। पर अपने मध्यवर्गीय संस्कारों के फलस्वरूप उस वर्ग की भी बहुत-सी बातें जाने-अनजाने उनके दोहों में अभिव्यक्त हो उठी हैं। ग्राम के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण की चर्चा ग्रन्थ के प्रारंभ में ही की जा चुकी है।

बिहारी को अपनी नागर-संस्कृति पर गर्व था। इसी से वे डंके की चोट कहते हैं—'वे न यहाँ नागर बड़े....।' इन नागरों के प्रतिनिधि थे मिर्जा राजा जयसिंह। उनके कतिपय गुणों को बिहारी के ही शब्दों में सुनिए—

(१) प्रतिबिंबित जयसाहदुति, दीपति दरपन-धाम।
सब जग जीतन कौं कियौ, काय-ब्यूह मनु काम॥

(२) नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ, आगे कौन हवाल॥

(३) स्वारथ सुकृत न श्रम बृथा, देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराएँ पानि परि, तूँ पच्छीन न मारि॥

उपर्युक्त तीन दोहों में नागर संस्कृति के तीन पक्षों के प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। पहला दोहा उस संस्कृति के वैभव-विलास का प्रतीक है तो दूसरा उसकी काम-क्रीड़ा का। तीसरे में उसकी विवशता, चिन्तनहीनता तथा व्यक्तित्व-हीनता चित्रित है। पहली और दूसरी विशेषताओं की चरम परिणति तीसरी में ही दीख पड़ती है।

मिर्जा राजा जयसिंह के जिस दर्पण-धाम की चर्चा ऊपर की गई है वह केवल बिहारी की ही कल्पना में नहीं आया था। देव का एक आदर्श महल देखिए—

Scanned by CamScanner

उज्जल अखंड खंड सातएँ महल महा-
मंडल सँवारो चन्द्रमंडल की चोट ही।
भीतर हू लालनि के जालनि बिसाल ज्योति,
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन को जोट ही॥

राजमार्गों की नयनाभिराम झाँकी लेने के लिए इन प्रासादों में जो गवाक्ष बने होते थे उसमें से झाँकती हुई नायिका को देखकर नायक कह उठता था—'पावक झर सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि।' पावक की लपट-सी बिहारी की नायिका आज भी सहृदयों में ऐन्द्रियानुभूति जागरित कर देती है।

जिस वातावरण में बिहारी का समय व्यतीत हो रहा था वह विलासिता से ओत-प्रोत था। सामन्तों से नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण की आशा ही क्या की जा सकती थी। मुगलों की छत्रछाया में ये विलासी सामन्त निर्भय विलास का सुख लूट रहे थे। उनके लिए 'तिय-छवि', 'छाया ग्राहिनी' से कम न थी। उन्हीं के मनस्तोष के लिए तो नायिका-भेद का विपुल-साहित्य तैयार हुआ था। बिहारी ने नायिका-भेद के लक्षण-उदाहरण तो नहीं प्रस्तुत किए पर नायिकाओं की अनेकानेक भंगिमाओं, चेष्टाओं, मनोदशाओं आदि के चटकीले चित्र खींचे। उन्हें घर में, घाट-बाट में, कुञ्ज-वन में सर्वत्र शोखी से भरी हुई देखा। इसीलिए पीछे कहीं पर मैंने लिखा है कि वे अपने युग के प्रति पूरी तरह से ईमानदार थे। नायिकाओं के सहज सौन्दर्य और भोलेपन से उनको कुछ विशेष लेना-देना नहीं था। वे उनके अन्दाज और शोखी पर फिदा थे—जो एक विशेष प्रकार के दृष्टिकोण का द्योतक था।

अनेक आभूषणों से अलंकृत तथा पारदर्शी वस्त्रों में लिपटी हुई स्वर्णजुही-सी जगर-मगर करने वाली देह-दुति वाली नायिकाएँ सामन्त-सरदारों के मनोरंजन का साधन थीं। बारीक रेशमी साड़ी पहनने पर उसकी अंग-कान्ति इस तरह शोभन प्रतीत होती थी मानों जलचादर के भीतर जगमगाती हुई दीप-ज्योति। बारीक नीले घूँघट की ओट से झाँकता हुआ नायिका का चन्द्रमुख ऐसा लगता था मानो कालिन्दी के नीले जल में झिलमिलाता हुआ चन्द्रमा। अंग-ज्योति के सम्बन्ध में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। पर जब नायिका की सखी उसको 'हँसौही बान' के विषय में सावधान रहने को कहती है तो गजब हो जाता है—

नैकु हँसौही बानि तजि, लख्यौ परत मुख नीठि।
चौका चमकनि चौंध में, परत चौंधि सी डीठि॥

वास्तविकता यह थी कि सामन्तीय जीवन का झुकाव सामान्य के प्रति न

होकर असामान्य के प्रति होता था। ऐसी स्थिति में नायिकाओं का भी अनेक दृष्टियों से आकर्षक और शोभन होना आवश्यक था।

नायिकाओं की अनेकानेक चेष्टाओं का वर्णन—कदाचित रीतिकालीन अन्य कवियों की अपेक्षा बिहारी-सतसई में इसकी अधिकता है—उपर्युक्त तथ्य को ही प्रमाणित करता है। चेष्टाओं का विस्तृत वर्णन पीछे किया जा चुका है। यहाँ पर एक उदाहरण अलम् होगा—

भौंह उँचै, आँचर उलटि, मौर मोरि, मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, डीठि डीठि सों जोरि॥

ये चेष्टाएँ ऐसी हैं जिनमें रसिक आकण्ठ मग्न रहते थे। जरा उनका निरपेक्ष दृष्टिकोण भी देखें—

अहे दहेंड़ी जिन धरै, जिन तूँ लेहि उतारि।
नीकें है छीकें छुवे, ऐसे ही रहि नारि॥

प्रेम क्रीड़ा को व्यक्त करने के लिए रीतिकालीन कवियों ने अनेक उत्सव, तीर्थ, खेलकूद, नृत्य, गान, कूप, तड़ाग, दोला, व्रत, त्यौहार आदि को भी संदर्भ के रूप में ग्रहण किया है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि संस्कृति और कला प्रेमोन्नयन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पर इस सांस्कृतिक ह्रास के युग में इन्हें उन्नयन के रूप में न स्वीकार करके उद्दीपन के रूप में ग्रहण किया गया। इसका फल यह हुआ कि इनकी स्वतन्त्र सत्ता लुप्त हो गयी।

उत्सव के नाम पर फाल्गुनोत्सव का वर्णन इस काल के कवियों ने बहुत किया है। यों अपने आप में इस उत्सव का काफी महत्व है। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह मानसिक रेचन का काम करता है। बिहारी, देव, पद्माकर, बेनी प्रवीन, घन आनन्द, ठाकुर, ग्वाल आदि कवियों ने इस महोत्सव का रंगीन वर्णन किया है। 'होली के हुरदंग' का ऐसा ऐन्द्रिय चित्र अन्यत्र कहीं शायद ही मिले।

'ऋतु के अनुकूल, केसरिया और पीत वस्त्रों की बहार, कोकिल और पपीहे की पुकार, नृत्य, वाद्य, गुलाल-केशर और अबीर की झोली, पिचकारी की फुहार, स्त्री-पुरुषों की लपक-झपक, धर-पकड़, रीझ-खीझ, भाग-दौड़, वस्त्रों की खींचा-तानी, डफ-ढोल, मृदंग, वंशी आदि सभी उपकरणों को एकत्र किया गया है।'[१] पर इसके वर्णन में बिहारी की दृष्टि औरों से किंचित् भिन्न है।

---

१. डा० बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना, पृ० ३०३-५८।

Scanned by CamScanner

इनका दृष्टिकोण इतना टिपिकल सामंतीय है कि दूसरों से अलग हो गया है। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) ज्यों ज्यों पटु झटकति हठति, हँसति नचावति नैन।
त्यों त्यों निपट उदारहूँ, फगुवा देत बनै न॥
(२) पीठि दियेहीं नैक मुरि, कर घूँघट पट टारि।
भरि गुलाल की मूठि सों, गई मूठि सी मारि॥

इनमें फाग के अन्तर्गत नायिका की चेष्टाओं का जो इतना ध्यान रखा गया है वह क्रीड़ात्मक दृष्टिकोण का द्योतक है।

अब जरा हिंडोरे का दृश्य देखिए—

(१) हेरि हिंडोरे गगन तें, परी परी सी टूटि।
धरी धाय पिय बीचही, करी खरी रस लूटि॥
(२) बरजे दूनी हठ चढ़ै, ना सकुचै न सकाय।
टूटति कटि दुमची मचक, लचकि लचकि बचि जाय॥

पहले दोहे में नायिका—परी को नीचे गिरते देखकर नायक ने बीच में ही पकड़ कर खूब रस लूटा। दूसरे में कमर की लचक पर विशेष ध्यान दिया गया है।

'बैस-संधि-संक्रोन' को प्राप्त करने के लिए अशेष पुण्य की आवश्यकता होती है। इसमें सामंतीय दृष्टिकोण की ललक कितनी साफ हो गयी है। सूर्य जब एक राशि से दूसरी राशि पर संक्रमण करता है तो संक्रान्ति होती है। पर मकर संक्रान्ति का विशेष महत्व माना जाता है। इसका निर्देश करते हुए बिहारी कहते हैं।

काहू पुन्यन पाइये, बैस-संधि-संक्रोन।

ग्राम-जीवन की ओर दृष्टिपात करने पर भी वही सहेट-स्थल दिखायी पड़ता है—

सन सूक्यो बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उखारि।
हरी हरी अरहरि अजौं, धर धरहरि हिय नारि॥

नीचे उद्धृत दोहों में सामन्तीय शब्दावली का व्यवहार उस काल के वातावरण को प्रत्यक्षीकृत कर देता है—

(१) अपने अँग के जानिके, जोबन नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब कौ, बड़ौ इजाफा कीन॥
(२) नव-नागरि तन-मुलक लहि, जोबन आमिल जोर।
घटि बढ़ि तें बढ़ि घटि रकम, करी और को और॥

मानवती तथा खंडिता नायिकाओं की भरमार उच्चवर्गीय अवकाशभोगी वर्ग के सर्वथा अनुकूल है। निर्बाध अवकाश को काटने के लिए इससे बढ़कर और क्या साधन हो सकता था? चोर-मिहीचनी का खेल तो प्रेमपरक क्रीड़ा के लिए स्वर्ण-अवसर उपस्थित कर देता है—

दोऊ चोरमिहीचनी, खेल न खेलि अघात।
दुरत हियें लपटाय कै, छुवत हियें लपटाय॥

पहले ही कहा जा चुका है कि बिहारी का पालन-पोषण मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। इस वर्ग के गहरे संस्कारों से उच्च वर्ग में सम्मिलित होकर भी वे अपने को मुक्त न कर पाए। मध्य वर्ग के जीवन के भी वे ही चित्र उन्होंने लिए हैं जो शृंगार से सम्बद्ध हैं। मायके जाते समय नायिका की मनोदशा, गौने के समय उसकी मनोवृत्ति देवर-भाभी का प्रेम-सम्बन्ध आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके आधार पर मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की एक झलक मिल जाती है। बिहारो के अतिरिक्त इस काल के अन्य बहुत से कवियों ने भी इस वर्ग के प्रेमपरक प्रसंगों को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। किन्तु बिहारी के वर्णन में जो बंधान तथा अभिजात दृष्टिकोण दिखाई देता है वह अन्य कवियों में नहीं पाया जाता।

नैहर जाती हुई एक मध्यवर्गीय नायिका को देखिए—

पिय बिछुरन को दुसह दुख, हरष जात प्यौसार।
दुरजोधन लौं देखियत, तजत प्रान इहि बार॥

मुग्धावस्था में उसे नैहर जाते समय प्रिय के वियोग का दुःख नहीं होता था उस समय नैहर के प्रति, माता-पिता तथा अपने परिजनों के प्रति विशेष ममत्व के कारण विदा-वेला में हर्ष ही अधिक होता है। किन्तु अब मध्यावस्था में उसे ससुराल के प्रति मोह हो गया है, किन्तु नैहर का ममत्व भी कैसे छूट सकता है? इसलिए वह एक प्रकार के द्वन्द्व में पड़ गई है। एक ओर तो उसे प्रिय से बिछुड़ने का दुःख है और दूसरी ओर मायके जाने का हर्ष भी हो रहा है। इस तरह की मनोदशा प्रायः मध्यवर्ग में ही विशेष रूप से देखी जाती है।

मध्यवर्गीय परिवारों में देवर-भाभी का विनोद प्रायः चला करता है। सामान्यतः यह विनोद बहुत ही पवित्र और सुखद होता है। हो सकता है कि एक समय ऐसा रहा हो जब देवर-भाभी को मातृतुल्य मानता रहा हो। वाल्मीकीय रामायण के आधार पर इसको पुष्ट किया जा सकता है। एक

Scanned by CamScanner

जमाना वह भी आया जब दोनों का सम्बन्ध शुद्ध विनोद तक सीमित रहा। पर रीतिकालीन देवरों का आदर्श देखिए—

कहति न देवर को कुबत, कुलतिय कलह डराति।
पंजर-गत मंजार ढिग, सुक लौं सूकति जाति॥

इस पर रत्नाकर जी ने 'अवतरण' में लिखा है—'देवर अपनी भौजाई से अनुचित प्रेम करना चाहता है। पर भौजाई पतिव्रता तथा सुशीला है। अतः बड़ी चिंतित है। यदि वह देवर की खुटाई नहीं कहती, तो उसे भय है कि कहीं, अवसर पाकर, वह उसका आलिंगन इत्यादि न कर ले, और यदि कहती है, तो भाई-भाई में तथा देवर-देवरानी में कलह होता है। इस अड़चन में पड़ी हुई वह सूखती जाती है....।'

किसी मध्यवर्गीय स्त्री के लिए यह द्विधा की स्थिति बहुत ही स्वाभाविक है। सम्मिलित कुटुम्ब में प्रत्येक व्यक्ति का यह पवित्र कर्त्तव्य होता है कि वह उसे विघटित होने से बराबर बचाता रहे। सम्मिलित कुटुम्ब अपने आप में मध्यवर्गीय मर्यादा का प्रतीक है। अनेकानेक अत्याचारों को मूक भाव से सहन करते हुए भी व्यक्ति इसकी सुरक्षा पर आघात नहीं पहुँचाना चाहता था। आधुनिक युग में आर्थिक संकटों की मार से सम्मिलित कुटुम्ब तेजी से टूट रहा है, पर पहले स्थिति ऐसी नहीं थी। उक्त दोहे में सम्मिलित कौटुम्बिक प्रणाली के अन्तर्गत भाभी की मनोदशा का जो चित्र खींचा गया है वह बहुत ही स्वाभाविक बन पड़ा है।

प्रेम उत्पन्न होने के लिए आवश्यक है कि नायक नायिका के मिलने का कोई अवसर मिले। सूरदास ने गोपियों और कृष्ण के प्रेम को पल्लवित-पुष्पित करने के लिए बहुत से अवसरों को ढूंढ़ निकाला है। यमुना-तट तथा कुज-वन में उनसे प्रायः भेंट हो जाया करती थी। गोचारण का अवसर भी इसके लिए उपयुक्त माना गया। मध्यवर्गीय परिवार में किसी वस्तु के घट जाने पर एक परिवार का कोई व्यक्ति (सामान्यतः स्त्री) पड़ोसी के घर से उसे माँग लाता है। बिहारी ने प्रेमोत्पादन में एक ऐसे अवसर का उपयोग किया है—

फेरु कछु करि पौर तें, फिरि, चितई मुसुकाय॥
आई जामन लैन तिय, नेहै गई जमाय॥

आई तो थी वह जामन लेने; पर नायक के हृदय में स्नेह जमाकर चली गई।

परिधान, प्रसाधन और अलंकारों के आधार पर भी बिहारी को देखे हुए समाज को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—निम्नवर्ग, मध्यवर्ग और उच्च

अथवा सामंतीय वर्ग। निम्नवर्ग का आर्थिक स्तर बहुत ही नीचा था, इसलिए उनके लिए कीमती वेश-भूषा अकल्पनीय थी। स्त्रियाँ सामान्यतः घुँघुची अथवा सीप की माला पहनती थीं। चमकदार टिकुली भी वे पहनती रही होंगी। आज भी आधुनिक सभ्यता से अपरिचित निम्नवर्गीय स्त्रियाँ चमकदार टिकुली पहने हुए दीख पड़ती हैं। वे ललाट पर आड़े तिलक भी लगाती रही होंगी। बेंदी के रूप में वे सनई के फूल का प्रयोग करती थीं।

मध्यवर्ग की वेश-भूषा भी सामान्य ही थी—आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न न होने के कारण उनके लिए यही स्वाभाविक था। वे हाथ में अँगूठी, छल्ला, कमर में करधनी, पैरों में नूपुर, पाँव के अँगूठे में अनवट, अँगुलियों में बिछिया पहनती रही होंगी।

उच्च वर्गीय स्त्रियों की वेश-भूषा काफी कीमती होती थी। इसके लिए उनके पास अर्थ की कमी नहीं थी। वे जरीदार कोर की साड़ियाँ, 'चिनौटिया' अथवा धूपछाँहीं रंग के मूल्यवान परिधान पहनती थीं। वे बेंदियाँ पहनती थीं तो हीरे की जड़ी हुई, नाक में सीकें पहनती थीं तो नीलमणि से जड़ी हुई, ललाट पर टीका धारण करती थीं तो मणि-माणिक्य से संयुक्त, बेसरें ऐसी पहनती थीं जिनमें मोती झूलते थे। प्रसाधनों में कर्पूर, अंगराग, चंदन, गुलाब आदि प्रयोग में आते थे।

यों शृंगार का सामान्य रूप निम्नलिखित था—

बेंदी भाल, तँबोल मुँह, सीस सिलसिले बार।
दृग अंजे, राजै खरी, एई सहज सिंगार॥

जिन वेश-भूषाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है वे तत्कालीन चित्रों में भी दिखाई पड़ती हैं। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर भी यह प्रमाणित किया जा सकता है कि तत्कालीन समाज में उनका व्यवहार होता था।

किसी भी कवि की रचनाओं में वर्णित सामग्री के आधार पर उस युग को प्रत्यक्षीकृत तभी किया जा सकता है जब यह अच्छी तरह समझ लिया जाय कि उसमें से कितना परम्परा से गृहीत है और कितना तत्कालीन वातावरण से। पर यह कार्य सरल नहीं। इसके लिए प्रभूत ऐतिहासिक साक्ष्यों का आकलन करना होगा। कवि सामान्यतः काव्य-परंपरा में सुरक्षित बहुत से अलंकारों-प्रसाधनों आदि का प्रयोग करते रहते हैं। इसीलिए किसी आलोच्य कृति में वर्णित समाज का लेखा-जोखा केवल बाह्यालंकारों और प्रसाधनों के आधार पर ही नहीं प्रस्तुत किया जा सकता।

Scanned by CamScanner

लेकिन काव्य-परंपरा में उल्लिखित सामग्री का उपयोग करने पर भी कवि के दृष्टिकोण पर युग की कुछ ऐसी छाप पड़ी रहती है कि उसके अध्ययन पर तत्कालीन समाज की रूप-रेखा का निर्माण किया जा सकता है। यही कारण है कि किसी काल विशेष की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक स्थिति की जानकारी के लिए इतिहासकार उस काल की साहित्यिक सामग्री की भी परीक्षा करते हैं। बिहारी के देखे हुए समाज को इसी दृष्टि से परीक्षित किया गया है।

बिहारी का अपना दृष्टिकोण, जैसा पहले ही कहा जा चुका है, पूर्णतः सामंतीय था। इसलिये इस वर्ग का वर्णन उन्होंने जितनी ईमानदारी से किया है उतनी ईमानदारी से अन्य वर्ग का नहीं। अन्य वर्ग का चित्रण उतनी ही ईमानदारी से वे कर भी नहीं सकते थे। इसलिये निम्न वर्ग के प्रति अथवा गाँव के प्रति जो उपहासगर्भित उक्तियाँ मिलती हैं वे स्वयं गाँव या निम्न वर्ग की स्थिति को न अंकित कर बिहारी के नागर दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं।

मध्यवर्गीय परिवार की ही कुछ बातें वास्तविक ज्ञात होती हैं। अधिकांश सामंतीय चश्मे से ही देखी गई हैं। मध्य वर्ग का धरातल काफी व्यापक होता है। घरेलू जीवन की चुहलबाजियों, सौतों का सापत्न्य, द्वेष आदि उच्च मध्य वर्ग की विशेषताएँ हैं जो सामंतीय जिन्दगी के मेल में होती थीं। अतः बिहारी के समाज को देखने के लिए सामंतीय कुहासे का बराबर ध्यान रखना होगा।

□

Scanned by CamScanner